आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 4/अंक 4/दिसंबर 2024
Received: 10/12/2024; Accepted: 12/12/2024; Published: 30/12/2024

अकाल और सूखे की त्रासद कथा 'धपेल'

- डॉ. प्रतिभा प्रसाद
एसोसिएट प्रोफेसर
कुल्टी कॉलेज, कुल्टी, आसनसोल
पिन- 713343
जिला - पश्चिम बर्धमान
राज्य-पश्चिम बंगाल
मो.-8250425011
ई-मेल – pratibhaprasad439@gmail.com

डॉ. प्रतिभा प्रसाद, **अकाल और सूखे की त्रासद कथा 'धपेल'**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 4/अंक 4/दिसंबर 2024,(284-293)

'धपेल' श्यामबिहारी 'श्यामल' की सशक्त एवं सामर्थ्यवान कृति है। इसका प्रकाशन 1998 में हुआ। यह 'श्यामल' जी का प्रथम सफल उपन्यास है। श्यामल जी का जन्म 20 जनवरी 1965 को डाल्टनगंज पलामू (झारखण्ड) में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई। 1982 से 1986 ई0 तक इन्होंने साप्ताहिक हिन्दी समाचार-पत्र 'पलामू दर्शन' का संपादन किया। कुछ दिनों तक डाल्टनगंज से स्वतंत्र पत्रकारिता एवं तत्पश्चात् 1988 से 1991 तक दैनिक 'आज' में वरीय उप-संपादक रहे। उसके बाद 1991 से अब तक दक्षिण बिहार के सबसे पुराने बड़े अखबार दैनिक 'आवाज' के संपादकीय विभाग से संबद्ध रहे तथा साप्ताहिक स्तम्भ 'अपना मोर्चा' का लेखन किया। इन्होंने अनेकानेक साहित्यिक उपन्यास, कहानियों, लघुकथाओं, संस्मरणों तथा व्यंग्य साहित्य की रचना की जिनमें धपेल, अग्निपुरुष तथा कंथा (सद्यः प्रकाशित कृति)-**उपन्यास**; **लघुकथा** 'अंजुली भर' (1984), छोटी मछली, बड़ी मछली, राजनीति राजनीतिज्ञ, हराम का खाना, कब्जा, पुरस्कार; **कहानियाँ** – गीली मिठास, कागज पर चिपका समय, चना चबेना, गंगाजल, आना पलामू तथा सिद्धान्त। **संस्मरणों** में

'काशी में हम', 'हममें काशीनाथ', 'नामवर-सा नहीं कोई', वे दिन जो कभी ढले नहीं, अनवर शमीम और धनबाद की स्मृतियाँ तथा **व्यंग्य-साहित्य** के रूप में 'जितना मूर्ख उतना सूर्ख' तथा भाषा में भूसा, सरगम में शोर इत्यादि इनकी प्रमुख ख्याति प्राप्त कृतियाँ हैं। फिलहाल लेखक दैनिक जागरण वाराणसी में चीफ़-सब-एडिटर हैं।

श्यामल जी के उपन्यासों की चर्चा से पूर्व आधुनिक गद्य की महत्वपूर्ण देन के रूप में उपन्यास की चर्चा आवश्यक हो जाती है। साहित्य-दर्पणकार का इस संदर्भ में कहना था कि "'उपन्यासस्तु कर्माणां ग्रंथन' अर्थात् कार्यों के ग्रंथन को 'उपन्यास' कहते हैं लेकिन आज उपन्यास अंग्रेजी के 'नॉवेल' का पर्याय है। यह एक कथा विधा के रूप में मान लिया गया है। यह उप+न्यास दो शब्दों से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ है – समीप तथा 'न्यास' का अर्थ है – रखना। अर्थात् 'समीप रखना' यानी मानव जीवन के समीप रखना। भरतमुनि ने इसे 'उपपत्तिकृतोह्यर्थ' तथा 'प्रसादनम' कहा है।"1 प्रेमचंद ने 'इसे मानव चरित्र का चित्र मात्र' माना है। जैनेन्द्र ने 'आज के जीवन की अभिव्यक्ति का सच्चा माध्यम' माना है। डॉ0 हरिमोहन का कहना है - "उपन्यास गद्य की वह कथा तत्व प्रधान महाप्रबंध कथा विधा है जिसमें मानव-जीवन के यथार्थ के समूचे परिदृश्य को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।"2 अतः उपन्यास मानव जीवन की यथार्थपरक व्याख्या है। यह जीवन को नये संदर्भों से जोड़ता है तथा इसकी दिशा निर्धारित करता है। यह जीवन के आरोह-अवरोह को नया आयाम प्रदान करता है।

उपन्यासगत इन्हीं विशेषताओं से युक्त श्यामल जी की कृति 'धपेल' नये संदर्भों को उठाता है। इसमें जीवन तथा समाज के बहुविध रंग देखने को मिलते हैं। वैसे हिन्दी-उपन्यासों की विकास-यात्रा अत्यन्त ही व्यापक विस्तृत तथा सुदृढ़ है। यह चमत्कार मनोरंजन से आरम्भ होकर निरंतर यथार्थ की ओर विकसित होती रही। प्रेमचंद ने उपन्यासों को ठोस तथा नवीन जमीन प्रदान की। उनके उपन्यास जीवन के विविधमुखी समस्याओं से हमें परिचित करवाते हैं। उन्होंने दलित, स्त्री तथा किसान जीवन के हरेक पहलुओं को उठाकर हमें सोचने विचारने के लिए मजबूर किया। उनकी कृतियों में किसान जीवन के संघर्षों, उनसे जुड़ी समस्याओं तथा उन समस्याओं के पीछे छिपे कारणों को गहराई के साथ खंगाला गया है। उन्होंने किसान जीवन की वास्तविक छवि को प्रस्तुत करते हुए किसानों के साथ जमींदारों, सामंतों तथा पूँजीपतियों की भी वास्तविकता को खोल कर रख दिया है। अतः न सिर्फ किसान बल्कि किसानों के जीवन से सम्बद्ध प्रत्येक समस्या तथा उसके कारणों को परत-दर-परत खोलता हुआ प्रेमचंद का उपन्यास साहित्य-जगत को इस समस्या पर विचार करने हेतु प्रेरित करता रहा। यही कारण है कि प्रेमचंद ने जिन किसानों की समस्या को जमीन, खेत, अनाज, खलिहान, जमींदार, सामंत और ऋण से जोड़कर प्रस्तुत किया वहीं आगे चलकर विभिन्न कोणों को गहराई के साथ नयी अर्थवत्ता ग्रहण किए हुई दिखती है। यही कारण है कि प्रेमचंद के पश्चात् किसान जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को केन्द्र कर अनेकानेक कृतियाँ सामने आयीं, जिनमें बंगाल के दुर्भिक्ष को केन्द्र कर रांगेय राघव की कृति 'विषाद मठ' तथा अमृतलाल नागर के उपन्यास 'महाकाल या भूख' साहित्य जगत में अपनी खास पहचान बना सकने में

सक्षम सिद्ध होता है। आगे किसान-जमींदार संघर्ष को केन्द्र कर लिया गया उपन्यास लक्ष्मीनारायण लाल का 'धरती धन न अपना', बाबा नागार्जुन का 'बलचनमा' तथा 'बाबा बटेसरनाथ', ग्राम्य आंचलिकता को केन्द्र कर लिखा गया फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' तथा 'परती-परिकथा' किसानों के शोषण को जमीन से जोड़कर प्रस्तुत करने वाली अद्वितीय कृति के रूप में साहित्य जगत में प्रकाश पाती है। रामदरश मिश्र ने 'पानी के प्राचीर' तथा 'जल टूटता हुआ' शिवप्रसाद सिंह ने 'अलग-अलग वैतरणी' में कृषक जीवन में होने वाले घोर परिवर्तन को उठाया है तथा आजादी पश्चात् बदलते गाँव की तस्वीर प्रस्तुत की है। जगदीशचन्द्र माथुर की कृति 'धरती धन न अपना' तथा 'कभी न छोड़े खेत', किसान की अपनी मिट्टी, जमीन तथा खेतों से लगाव के साथ-ही दलित किसान वर्ग की वास्तविकता से परिचित करवाता है। इसी क्रम में विवेकी राय का 'लोकऋण', भैरव प्रसाद गुप्त का 'सती मैया का चौरा', 'गंगा मैया', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', नीलकांत का 'एक बीघा खेत', कुर्मेंदु शिशिर का 'बहुत लम्बी राह' एवं संजीव का 'फाँस' किसान जीवन से जुड़े विभिन्न समस्याओं को लेकर सामने आया। कहीं जमीन तो कहीं जमींदार सामंत, कहीं ऋण तो कहीं लगान और कहीं जमींदारों के विरुद्ध लामबंदी को उकेरती हिन्दी साहित्य की ये कृतियाँ कृषक जीवन की समस्याओं को मानों खोलकर हमारे समक्ष रख देता है।

किसान, जिनका जीवन आरम्भ से ही संघर्षपूर्ण रहा करता है। वे अन्नदाता कहलाते तो जरूर हैं किन्तु अन्न के एक-एक दाने के लिए उनकी जी-तोड़ मेहनत तथा उसे बचाने के लिए आजीवन संघर्ष ही मानों उनकी नियति बनकर रह जाती है। मानव जीवन के लिए अन्न की विशेष महत्ता है। यदि अन्न नहीं है तो शायद मानव जीवन का कोई अस्तित्व नहीं होता। इतने आवश्यक कर्म की निर्भरता अधिकतर वर्षा जल या कहें तो प्रकृतिप्रदत्त हुआ करती है। अतः किसान वर्षाजल पर निर्भर होकर अपनी खेती करते हैं, किन्तु प्रकृति के असंतुलन के कारण कभी सूखे तथा अतिवृष्टि की समस्या उन्हें आए दिन झेलनी पड़ती है। उनका जीवन-वृष्टि अनावृष्टि के कारण बेहाल हो उठता है। अतः ऐसी अवस्था में किसानों की निर्भरता जमींदारों, सामंतों पर हो जाती है। खेत जोतने से लेकर फसल बेचते तक वे जमींदारों के शोषण चक्र में फँसे रहते हैं, जिससे उनका जीवन जमींदारों के पैरों के नीचे दबा रहता है। ऋण तथा सूद-ब्याज के चक्कर में उनका सारा जीवन बदतर होता चला जाता है। किसानों की इन्हीं स्थितियों का लाभ पूँजीपति, जमींदार, साहूकार उठाते हैं। वे न सिर्फ किसान को अपने कर्ज के जाल में फँसाते हैं बल्कि उनकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी जाल में फँसती चलीं जाती हैं। कभी भी वे ऋण से उऋण नहीं हो पातें। शोषण की चक्की में पिसते किसानों के जीवन की वास्तविकता साहित्यिक कृतियों में स्थान पाती रही हैं। अकाल और सूखे से जूझते किसान विशेषकर पलामू के अतिसूखाग्रस्त इलाके में रहने वाले किसानों की बदतर जिन्दगी से रू-ब-रू करवाती श्यामबिहारी 'श्यामल' की अनुपम कृति 'धपेल' हमारे समक्ष नये सवा खड़ा करती दिखती हैं। इसमें पलामू जिले के अन्तर्गत आने वाले छोटे अति पिछड़े गाँवों में किसानों की दयनीय अवस्था

तथा अकाल सूखे से त्रस्त आहत कृषक समुदाय का अत्यन्त ही संवेदनात्मक स्वरूप देखने को मिलता है। यह 1993 के बिहार अकाल और सूखा प्रसंग को केन्द्र कर लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसें उद्धृत कथा अभिशप्त मानव समाज की भूख और गरीबी की गाँठों को खोलता चलता है। इस उपन्यास के संदर्भ में लेखक स्वयं कहते हैं - "यहाँ धपेल एक ऐसे भयावह प्रतीक के रूप में चित्रित हुआ है जो सभी प्रकार की जीवन शक्तियों को सोखने का काम करता है। दिवंगत आत्मा की शांति के लिए होने वाले ब्रह्मभोज में असाधारण मात्रा में भोजन करनेवाले धपेल बाबा अंततः व्यवस्था के उन तमाम धपेलों के आगे बौने साबित होते हैं, जो हर क्षेत्र में फैले ऊर्जा को चट करने में जुटे हुए हैं। व्यवस्था के धपेलीकरण का यह सारा वृतांत रोंगटे खड़े कर देनेवाला है।"3 धपेल बाबा मानों सूखे अकाल से मरते मनुष्यों पर करारा व्यंग्य प्रस्तुत करते हैं। वे अपना तो पेट भरते हैं किन्तु भूखी जनता त्रस्त है। भरे लोगों की आत्मा की शांति के दसवें के दिन धपेलबाबा को खूब खिलाया पिलाया जाता है और दान-पुण्य किया जाता है जिससे मृत आत्मा को मुक्ति मिल सके। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि एक ओर सूखा अकाल और दूसरी ओर मरनी पर इच्छा भर खिलाने-पिलाने की प्रवृत्ति मानव समुदाय के समक्ष प्रश्न खड़ा करती हैं।

कथा नायक घनश्यमा तिवारी उर्फ़ धनुबाबू वकील हैं। वे अपने ससुराल गाजियाबाद में रहते थे, किन्तु अपनी मिट्टी के प्रति उनके हृदय में जबरदस्त लगाव था। उसके दुःख-दर्द से वे भली-भाँति परिचित थे। यही कारण है कि "उनकी मिट्टी उन्हें अपनी ओर खींचती रहती है। उसके साथ उनका 'सेंटिमेंटल अटैचमेंट' था। धनु बाबू का हृदय पलामू के दर्द से भरा हुआ है। वे गाजियाबाद से पलामू लौटे ही हैं यहाँ की मिट्टी से बतियाने के लिए।"4 मास्टर साहब, महत्तो तथा गिरिजा से वे खासे प्रभावित थे। ये तीनों ही धनुबाबू के लिए इस मिट्टी के वास्तविक संतानें हैं। मास्टर साहब के विचारों और सिद्धांतों से वे अच्छे-खासे प्रभावित थे। मास्टर साहब अपने विचारों से नास्तिक थे किन्तु उन्होंने किसानों, खेतिहर मजदूरों के शोषण के विरुद्ध लड़ाइयाँ लड़ी। वे मंदिर जाकर पत्थर पूजने में विश्वास नहीं करते थे, लेकिन जिंदा आदमियों की सेवा में हरदम तैयार रहते थे; किन्तु धनुबाबू जब पलामू लौटकर आते हैं तो वे मास्टर साहब को बीमार अवस्था में पाते हैं। वहीं 1942 के क्रांति में पलामू के हीरो महतो जी तथा उनके पुत्र गिरिजा के संघर्ष को देखते हैं।

धनुबाबू पूरे पलामू क्षेत्र के अंतर्गत आने वाले ग्रामीण इलाके के सूखा एवं अकाल को देखकर द्रवित हो उठते हैं। उन्हें पलामू के इतिहास के साथ-ही पलामू के नामकरण की बीती बातें याद आती हैं। इसी क्रम में वे बताते हैं कि "यहाँ पाला बहुत पड़ता है। पहले यहाँ पाला से सारी फसलें वगैरह मारी जाती थीं। इसीलिए 'पाला' और 'मउ' मिलकर इसका नाम 'पलामू' हो गया।"5 गाँव के बुजुर्गों रामदीन पांडेय, मोहना की दादी के तजुर्बों से अवगत होकर धनु बाबू पलामू की उपजाऊ संस्कृति का ज्ञान लेते हैं। गाँव एवं ग्रामीण कृषि प्रधान संस्कृति की वैभवशाली स्मृतियों को याद करती हुई मोहना की दादी राजा मेदिनियाँ की कथा कहती हैं और बताती हैं कि

राजा मेदिनियाँ रात में अपनी प्रजा के दुःख-तकलीफों की जानकारी प्राप्त करने के लिए भेष बदलकर घुमा करते थे। दादी आगे कहती हैं - "रजवा चाहऽ हलई कि कोई परजा अइसन ओकर राज में ना रहे, जेकरा पास गाय-गोरू ना रहे। केकरो घर दूध-दही के कमी कब्बो ना होवो... साँचो, सब के घर हलई गाय-गोरू ओकर राज में।"6 मेदिनियाँ राजा का भेष बदलकर गाँव-गाँव घुमना तथा अपने राज में घर घर में गायों का होना अनिवार्य शर्त थी। इससे इस बात की सूचना मिलती है कि पलामू का इलाका आरम्भ से ही इस अवस्था में न था जैसा कि वह आज के समय में है। मेदिनियाँ राजा कहा करते थे कि "हम्मर राज में कोई अमदी के घर अइसन नाई होवेला चाही, जेकर दुआर पर गाय-गोरू के बिना खूँटा खाली रहे एको साँझ।"7 चेरो राजा मेदिनियाँ का पशु-प्रेम वहाँ की ग्रामीण संस्कृति के सत्य को खोल कर रख देता है।

धनु बाबू पलामू के आस-पास के ग्रामीण अंचलों में घुम-घुमकर वास्तविकता का ज्ञान अर्जित करना चाहते थे। इसी क्रम में बेतला गाँव में पहुँचते हैं। वहाँ पहुँचकर वे सूखा और अकाल के नाम पर स्वार्थसिद्धि के खेल को चलता देखते हैं। इस अंचल की कृषि संस्कृति को किस प्रकार ताक में रखकर अपना-अपना उल्लू सीधा करने में स्वार्थी प्रवृत्तियाँ रमी हुई हैं? इसका अवलोकन धनु बाबू करते हैं। इस अंचल की सूखाग्रस्त तस्वीर और उसके छल-छद्म को उजागर करते हुए सुन्नर कहता है - "यह तालाब सन् सड़सठ के अकाल में भी इस तरह नहीं मरा था। पहली बार यह इस कदर बेमौत मरा है। कभी इसका पानी सूखता नहीं था।"8 अतः हरे-भरे खेतों तथा फसलों से लहलहाती यह धरती स्वार्थपरता की शिकार होकर आज इस विशद अवस्था में दिखाई पड़ती है। किसानों एवं जानवरों से भरी हुई धरती आज अकाल तथा सूखे के कारण पानी की एक-एक बूँद के लिए तरसती है। सूखे की भयावहता इस कदर है कि जानवर तथा इंसान मरे पड़े दिखाई देते हैं। एक मरे गाय का दृश्य मन को आहत कर देता है - "सूखकर ठठरी हो चुकी गाय के पेट पर खासा बड़ा गड्ढा बन चुका था और सीने की खपच्चियों जैसी हड्डियाँ बाहर की तरफ उभर रही थीं। मुँह बाया हुआ होने के चलते ऐंठी जीभ बाहर, बर्तन माँजने वाले गंदे, सूखे चिथड़े की तरह निकली दिख रही थी और काले पड़े दाँत भी। शरीर पर कौवे या बाज का कोई अत्याचार नहीं चस्पा हुआ था, जिसका मतलब साफ था कि गाय शायद कुछ ही देर पहले की उलटी हुई हो।"9 यह दृश्य मानों जानवरों तथा मनुष्यों के जीवन के मोल को कम करता प्रतीत होता है।

बेतला गाँव के पश्चात् धनु बाबू सुग्गापाट गाँव की दिल दहला देने वाले दृश्यों को देखकर आहत हो उठते हैं। भूख तथा उससे उपजी मौत की पीड़ा मानों पलामू जिले के गाँवों की वास्तविकता बयां करती चलती है। इस गाँव में दो वर्गों की भिन्न स्थितियों को देखकर धनु बाबू का मन आहत हो जाता है। वे देखते हैं कि इस गाँव में सामंतों के यहाँ भात-दाल-तरकारी-रोटी है तो गरीब गाँव वालों के यहाँ महुआ-मड़ुआ या सरई घाठा। उनकी हैसियत इतनी कम थी कि वे सामंतों के समकक्ष आने से भी हिचकते थे। इसका कारण यह था कि सामंतों की क्रूरता भरे पेट के सुविधापरस्त व्यक्तियों की तरह थी। गिरिजा (धनु बाबू का मित्र) के शब्दों में - "सामंत अपनी

कम या ज्यादा क्षमता के कारण छोटा या बड़ा सामंत नहीं होता। वह अपनी क्रूरता और अमानवीयता के कारण ही तो सामंत होता है।"10 सामंत तो स्वयं मोटे सेठ थे और जनता गरीबी तथा ऋण के बोझ से लगातार दबती चली जा रही थी। यह कर्ज और ऋण की समस्या किसानों के साथ सदा से ही चिपकी रही है किन्तु जहाँ कृषक ऋण के बोझ से दबा रहता है वहीं किसान के धीरे-धीरे मजदूर बनने पर भी उसकी इस समस्या का निदान नहीं होता। पलामू क्षेत्र के गाँवों में घूमने तथा यथा स्थिति के अवलोकन के पश्चात् धनु बाबू इस सत्य से परिचित होते हैं। वे शोषण की इस पराकाष्ठा को देखकर न सिर्फ आहत होते हैं बल्कि उनकी पीड़ा उन्हें अंदर तक सालती है। गाँव में मउवार साहबों का दबदबा बना रहता। पढ़े-लिखे पांडे जी गरीब किसानों के शोषण की चक्की में पिसते रहने की बात कहते हैं और बड़े गर्व से किसानों को बँधुआ बनाने की बात स्वीकारते हैं। वे कहते हैं - "जब बनारस से लौटकर अपनी जमींदारी सँभाली थी तो दस-बारह साल तक लगातार इसे चारों तरफ बढ़ाया। हमारे बाबूजी पाँच-छह परिवारों को सेवकिया (बँधुआ) बनाए थे, हमने चौदर-पंद्रह परिवारों को अपने परिवार में मिला लिया, सेवकिया बना लिया। उनकी जमीन जो हमेशा बीज के लिए, पानी के लिए, जोताई के लिए तरसती रहती थी, उसे कैसे-कैसे करके अपने हाथ में ले लिया। उन परिवारों के पेट की चिंता भी खतम, हमारे पास उनकी जमीन आ जाने से हमारी उपज में भी तीन सौ मन अनाज की सालान बढ़त। उन परिवारों के ऊपर हमारा कर्जा भी ऐसा कि वे पुसुत-दर-पुसुत इसी में खटकते रहे, हमारा करजा जस-का-तस। करजे के सूद में उनकी सपरिवार मेहनत और बंधक (अमानत) के रूप में उनके खेल। जमींदारी छीना जाने के बाद भी हमने कैसा पेंच निकालकर अपनी बढ़ोत्तरी की।"11 गरीब किसानों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी इसी तरह 'सेवकिया' के रूप में सामंतों की सेवा करती तथा इनके बच्चे तथा उनके बच्चे जन्म से लेकर मृत्यु तक ऋण से उऋण नहीं हो पाते। गाँव के प्रत्येक ग्रामीणों की यही दशा रही। गिरिजा गाँव के लोगों की विशद तथा दीन-हीन दशा का परत-दर-परत खोलता चलता है। मउवार लोगों के शोषण-चक्र में फँसे ये गरीब लोग किसी तरह जीवन-यापन करते हैं। उनके जीवन के दुःख उनके शब्दों में व्यक्त होते हैं, जहाँ वे कहते हैं - "ऐ बाबू, हमीन के उहाँ बकार (आवाज) नाऽ नहु निकल लई ! हमीन के छाती पर बाप-दादा के करजा के बोझ हऊ। तऽ छोटका मउवार साहेब के मँझिलका लइकवा अइसे एगो खींचके थाप मरलऽक कि हम्मर बेटवा उहई फड़फड़ा के पंछी जइसन गिरलऽक। हमीन मरद-मउगी दउड़ली। हमर बेटेवा मरे जइसन साँस-ओंस रोक के बेहोश पड़ल हलक।"12 इतना ही नहीं, शोषण का चक्र क्रमशः चलता ही रहता है। होरिल इसी सत्य से परिचित करवाता है। वह भी कहता है कि - "हाँ ! बाउज्जी के बाउज्जी भी इहे दुआर पर मउवार साहेब के बाऊज्जी के बाऊज्जी बुढ़वा मउवार के सेवकिया हलथिन। ओकरीन के केतना काऽ मिलऽ हलऽई सोऽ तऽ हमींन नाऽ जानऽ हिअऊ, बाकिर हमीन के कबों मडुआ, कबो महुआ, कबो सरई, कबो चाउलो (चावल) के चोकरो भेंटा जाऽ लऊ।"13 इन मउवरवा साहबों के शोषणचक्र इतने पैने तथा धारदार हो गये थे कि ये मारपीट भी किया करते थे। उनकी छोटी-से-छोटी गलती भी

मउवरा साहबों के लिए शोषण का हथियार बन जाता। शनीचरा कहता है - "ऐ बाबू ! हमीन तऽ लइकाँई में देखले हीउअऊ कि ई मउवरवा के जे बाप रहऊ ऊ हम्मर बाऊज्जी के बड़ी मारऽ हलऽऊ ! खड़ंवा (खड़ाऊँ) पहिनले छतिया पर चढ़ जाऽ हलऽऊ! बाकिर ई मउवरवा ओइसन नखऽऊ हमीन के कबो ओइसे नखऽउ मरले।। बहुत पोल्हा के बतिआवऽ हऊ। एकदमें आपन बाप-भाई जइसे। कबो-कबो गोस्सा हउ तऽ आँख तड़ेर के डाँट देवऽ लऊ ! बाकिर कमवे बहुत करावऽ लऊ। रात में हाड़ टुटे-लगऽ लऊ त बुझाऽ लऊ कि चाती के फट्ठी टाटी-फाटी जइसे टूट लगऽ लऊ। दरद से हाथ-गोड़ बुझा लऊ कि रास्सा से ओरच-ओरच में बान्हल हऊ!"14 घोरान गाँव में सूखे और अकाल का खेल चलता है। सूखाग्रस्त अंचल तथा वहाँ व्याप्त छल-छद्म लोगों के जीवन को दुभर बनाता चला जा रहा था। सुन्नर कहता है - "सभी घरों में वृद्धजन और बच्चे तथा स्त्रियाँ ही बचे हुए हैं। गाँव के सारे पुरुष लापता हैं। अन्न तो अन्न, पीने का पानी तक मुहाल हो गया है। लोग दाना-पानी के बिना पटपटाकर मर रहे हैं। दूर-दूर तक फैले सात-आठ टोले हैं इस गाँव में, जहाँ कहीं-न-कहीं रोज एक-न-एक भूख से मौत हो रही है।"15 खेती युक्त जमीन धीरे-धीरे वृक्षों के कटाव तथा पूँजीपति स्वार्थपरता के हाथों चढ़कर बंजर होती गयी। सामंतों, सेठों, साहूकारों का तो कुछ नहीं बिगड़ा, परन्तु किसान, मजदूर, बंधुआ बनकर मरने को विवश होता चला गया। इस सच्चाई को धनु बाबू गहराई तक समझ चुके थे। वे इस बात को स्पष्ट रूप में सबके समक्ष व्यक्त करते हैं तथा कहते हैं - "ई सूखा-अकाल का दिन इस धरती के लिए सबसे ज्यादा त्रासद साबित होता रहा है कि जब जिंदगियों का एक हुजूम ही पटपटाकर सूखता हुआ भूख से मर रहा होता है और चंद हैवानी नकाबपोश नामी-गिरामी 'हस्तियाँ' इस मौत के तांडव में छककर खून पीने का काम करती हैं। इस संकट-काल उनके लिए दशकों बाद आने वाले जायकेदार बसंत की तरह होता है।"16 इस विरोधाभासी स्थिति को मानो धनु बाबू पूरी तरह से समझते थे। वे गाँव वालों को भूख और प्यास से त्रस्त देखते हैं किन्तु उनके भीतर की मानवीयता का कहीं भी अभाव उन्हें नहीं दिखता है। वे स्वयं से अधिक चिंता पशु-पक्षियों की किया करते हैं। गिरिजा मुनिया से कहता है - "ऐ मुन्नी। ऊ कऊववा (कौवा) के तनी पानी दे के देख तो।"17 इस मानवीयता ने ही भीषण अकाल में भी उन्हें जीवित रहने की शक्ति प्रदान की। उनकी जिजीविषा ऐसी थी कि वे सूखाग्रस्त वर्षा वंचित क्षेत्र में रहकर भी कभी भाग्यविधाता से उदास नहीं होते और न ही कोई शिकायत करते हैं। वे बदतर स्थितियों को झेलते तथा मीलों चलकर पानी ढोते, मानो ये पानी नहीं बल्कि उनका लहू हो।

कृति में धनु बाबू के माध्यम से लेखक मानो हजारों सवाल उठाते हैं। उनका कहना था कि आजादी के सही मायनों को यहाँ भूला दिया गया है। आजादी के संघर्षों के सुनहले स्वप्न मानों विलुप्त हो गये हैं। कृषकों के जीवन में परिवर्तन लाने के लिए अनेकानेक घोषणाएँ तथा प्रयास किए गए किन्तु यह परिवर्तन नाममात्र का ही रह गया। क्रांतिकारियों के पागल सपने कहीं खो गए। यही कारण है कि गाँव का एक दुकानदार कहता है - "अब तो लगता है कि देश को अंग्रेजों की मुट्ठी से छुड़ाने का सपना जो हम लोगों ने उस जमाने में देखा है, वह निहायत

ही पागल सपना था। जमींदारों को खत्म कराया गया, लेकिन वे बिजनेसमैन और नेता, मंत्री बनकर फिर उसी तरह, सिर्फ नकाब भर बदलकर आ गए। थैलीशाहों ने राजनीति को जरखरीद बना लिया। पैसे वाले राजनीति के नियंता बन गए। उनके ही इशारों पर तख्त पलटने लगा। वे किले बनवाकर उसी पुरानी शान-शौकत के साथ रह रहे हैं।"18 मास्टर जी, महतो तथा गिरिजा जीवन पर्यन्त संघर्ष करते रहते हैं किन्तु उनके संघर्ष की परिणिति होती है – गरीबी, भूखमरी, बीमारी तथा फाँकाकशी में। इतना होते हुए भी इनमें नैतिकता, विश्वास तथा आस्था बची हुई रहती है। ये बची-खुची ईमानदारी के मूर्तिमान प्रतीक थे।"19 पलामू की धरती इन चंद लोगों के संघर्ष के कारण अपना अस्तित्व बचा सकने में सक्षम हुई है। इस धरती ने न जाने कितने प्रहार सहे हैं। खेती युक्त जमीन धीरे-धीरे वृक्षों के कटने तथा मानवीय दुर्व्यवहार के कारण विशद अवस्था में पहुँच जाती है। लोगों का जीवन बद-से-बदतर होता चला जाता है। इस सच्चाई को महतो जी के कथनानुसार समझा जा सकता है - "पलामू की इस धरती के साथ सबने धोखा किया है, हमने भी। प्रकृति ने इसे वर्षा-वंचित क्षेत्र बना डाला, अफसरों ने इसे अपना सुरक्षित चारागाह बना लिया और वोट की राजनीति करने वालों ने तो इसे खेल का मैदान ही बना डाला। वे जब चाहते हैं भूख और सुखाड़ से ग्रस्त इस धरती पर कभी मंदिर-मस्जिद के झगड़े की गेंद उछाल देते हैं तो कभी ऐसी ही दूसरी बेमतलब बात। वे कभी इस धरती की बदहाली दूर करने, पलामूवासियों की गरीबी दूर करने और विकास करने की बात नहीं करते। बात करते भी हैं तो गर्दन के ऊपर से नीचे से नहीं। हमलोगों ने भी क्या किया है भला। हमलोग भी देश की आजादी के लिए लड़े पलामू को गरीबी से मुक्ति दिलाने के लिए नहीं। आज भी पलामू में बँधुआ मजदूरी है। लोग हर साल सुखाड़ से जूझते और भूख से मरते हैं।"20 इस प्रकार पलामू की हरी-भरी धरती अकाल और सूखे की शिकार हो गयी।

लेखक ने कृति में विभिन्न चरित्रों तथा स्थितियों के माध्यम से पलामू की धरती के सूखे, अकाल, उजाड़ तथा आपदा को प्रस्तुत किया है। मिश्र जी के शब्दों में - "वर्षों-वर्षों से यहाँ किसिम-किसिम के धपेलों का प्रकोप है, जो विभिन्न क्षेत्रों की ऊर्जा और इसके स्रोतों को चाटते-सुड़कते जा रहे हैं। चाहे यहाँ का जंगल हो, या यहाँ की खेती हो या यहाँ के खनिज स्रोत, धपेल सभी क्षेत्रों में हावी है। वे पी जाते हैं यहाँ की तमाम नदियाँ और सभी नालों का पानी। वे चबा जाते हैं यहाँ का जंगल और चाट जाते हैं नर्म-मुलायम हरियाली को। वे ही पी जाते हैं यहाँ की धरती की कोख से निकालकर खनिज संपदाएँ। इस धरती के रस को उन्होंने ही सोखा है, वे ही पोसते-पालते हैं अकाल और सूखे का राक्षस, जिससे करते हैं अपनी लक्ष्य सिद्धि।"21 अतः धरती के बदलते स्वरूप तथा मानवीय जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को 'धपेल' नामक कृति के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है।

कृतिकार व्यवस्था के धपेलीकरण के फलस्वरूप धरती के स्वरूप में घोर बदलाव का अनुभव करते हैं। मेदिनियाँ राजा के प्रसंग के माध्यम से वे यह बतलाना चाहते हैं कि यह धरती भी पहले खेती योग्य थी। यहाँ किसान तथा मवेशियों का अधिपत्य था, किन्तु प्रकृति के दोहन तथा स्वार्थवृत्तियों के कारण धीरे-धीरे यह धरती अपना

स्वरूप बदलने लगी और इस लहलहाती धरती पर सूखे और अकाल का प्रकोप बढ़ने लगा। जिसकी मार सहते-सहते पलामू की यह धरती सूखी और बंजर बन गयी तथा मुनाफे और स्वार्थपरता का खेल शुरू हुआ किन्तु लेखक इस घोर बदलाव से भी डरते नहीं हैं। यही कारण है कि उन्होंने इसकी शुरूआत 'विपर्यय' से तथा अंत 'अपराजेय समर' से किया है अर्थात् मानवीय जिजीविषा पराजय को तैयार नहीं और यह समर चलता रहेगा। इसी आशा के प्रति आशावान होकर लेखक पूरी कृति को रच डालते हैं। इसकी भाषा सधी हुई तथा चरित्र अत्यन्त ही प्रभावशाली दिखाई पड़ते हैं। कृति सूखे तथा अकाल से त्रस्त मानव जीवन की संघर्ष-कथा बनकर सामने आयी है।

संदर्भ सूची :

1. वर्मा, डॉ0 धीरेन्द्र (प्रधान सम्पादक), हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 (पारिभाषिक शब्दावली), पृ0-121
2. डॉ0 हरिमोहन, साहित्यिक विधाएँ : पुनर्विचार, वाणी प्रकाशन-2019, पृ0-147
3. श्यामल, श्यामबिहारी – धपेल (उपन्यास), राजकमल प्रकाशन प्रा0 लिमिटेड, सं0-1998, फ्लैप पृष्ठ।
4. वही, पृ0-258
5. वही, पृ0-62
6. वही, पृ0-109
7. वही, पृ0-109-110
8. वही, पृ0-126
9. वही, पृ0-144
10. वही, पृ0-204
11. वही, पृ0-214
12. वही, पृ0-207
13. वही, पृ0-223
14. वही, पृ0-224
15. वही, पृ0-132
16. वही, पृ0-140
17. वही, पृ0-230

18. वही, पृ0-236
19. वही, पृ0-280
20. वही, पृ0-240-241
21. वही, पृ0-119

****